नियमसार २६३ कलश है।

मुक्त्वा भव्यो वचन-रचनां सर्वदातः समस्तां,
निर्वाणस्त्रीस्तनभरयुगाश्लेषसौख्यस्पृहाढ्यः।
नित्यानन्दाद्यतुल-महिमा-धारके स्व-स्वरूपे,
स्थित्वा सर्वं तृणमिव जगज्जालमेको ददर्श।।२६३।।

.... प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान में भी वचन रचना को छोड़कर, उस ओर के विकल्प को भी छोड़कर, आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव करना, उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करना, तब उसे धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा! ऐसा है। पंचम भाव वह पारिणामिकभाव, ध्रुवभाव, अचल, अनादि-अनन्त नित्यानन्द सत्ता जो है, उसे अनुभव करना, उस ओर दृष्टि करके वेदन करना, इसका नाम धर्म है।

---

* **स्तुति=देव और मुनि को वन्दन। (धर्मकथा, स्तुति और मंगल मिलकर स्वाध्याय का पाँचवाँ प्रकार माना जाता है।)**

इसलिए यहाँ कहते हैं कि **ऐसा होने से,...** अर्थात् कि वचन और वचन के विकल्प भी छोड़े होने से **मुक्तिरूपी स्त्री के पुष्ट स्तनयुगल...** केवलज्ञानरूपी पुष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन पुष्ट। आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन यह पुष्ट है। **स्त्री के पुष्ट स्तनयुगल के आलिंगन-सौख्य की स्पृहावाला...** जिसे केवलज्ञान और केवलदर्शन की स्पृहा है, उसे स्पर्श करने का जिसे भाव है... आहाहा! उसे यहाँ समकिती कहा गया है। जिसका ध्यान वस्तु के ऊपर है, और जिसके परिणाम में केवलज्ञान की स्पृहा है। दूसरी किसी चीज़ की इच्छा नहीं है। आहाहा! ध्यान में ध्येय लेना, ध्यान में ध्येय लेना और साध्य में केवलज्ञान लेना। पूर्ण स्वरूप, ऐसा कहते हैं।

पूर्ण **मुक्तिरूपी स्त्री के पुष्ट...** पुष्ट स्वभाव उसका। उसके **आलिंगन-सौख्य की स्पृहावाला...** आहाहा! जिसे केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्त आनन्द चाहिए, ऐसी ही जिसे अन्तर में स्पृहा है। किसी प्रकार का विकल्प, दूसरे प्रकार का लेना-देना कुछ है नहीं। ऐसी जिसे अन्दर स्पृहा है। वह **भव्य जीव...** वह भव्य जीव। वह योग्य जीव है। आहाहा! **समस्त वचनरचना को सर्वदा छोड़कर,...** समस्त वचनरचना को (अर्थात्) द्रव्य शास्त्र और द्रव्य प्रतिक्रमण के शब्द, उनको सर्वदा छोड़कर। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! अकेला भगवान अन्दर विराजमान है। पूर्णानन्द और पूर्ण शान्ति का सागर, जिसमें विकल्प का अवकाश नहीं, जिसमें भेद का अवसर नहीं, ऐसा जो अभेद स्वभाव, उसकी पुष्टि केवलज्ञान और केवलदर्शन... आहाहा!

ऐसी **स्पृहावाला भव्य जीव समस्त वचनरचना को सर्वदा छोड़कर, नित्यानन्द आदि अतुल महिमा के धारक...** आहाहा! प्रभु कैसा है? नित्यानन्द है। नित्य आनन्द है। अतीन्द्रिय अतीन्द्रिय आनन्द, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से नित्य भरा हुआ है। आहाहा! ऐसे **नित्यानन्द आदि...** आदि अर्थात् नित्यानन्द, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता, अनन्त निर्विकल्पता। **आदि अतुल महिमा के धारक...** जिसकी कोई तुलना नहीं। जिसकी कोई महिमा नहीं, जिसे किसी की-बाहर की महिमा और माहात्म्य नहीं।

अतुल महिमा के धारक निजस्वरूप में स्थित रहकर,... निजस्वरूप में स्थित रहकर। आहाहा! **अकेला (निरालम्बरूप से)...** स्वरूप चैतन्यमूर्ति नित्य है। अनादि-

अनन्त सत् सत्ता जिसकी है, उसके अवलम्बन द्वारा और दूसरे बिल्कुल निरालम्बन द्वारा। दूसरा कोई आलम्बन नहीं है। आहाहा! उस द्वारा **सर्व जगतजाल को...** आहाहा! मान, सम्मान, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, महत्ता, महिमा, जगत की पदवी। अनेक प्रकार का जगत, सर्व जगत। सब **जगतजाल को...** ओहोहो! **(समस्त लोकसमूह को) तृण समान (तुच्छ) देखता है।** भगवान आत्मा को नित्यानन्द देखता है। इसके अतिरिक्त पूरी दुनिया को तृण समान देखता है। आहाहा!

प्रभु को अनादि शाश्वत नित्यानन्द और अनादि-अनन्त सत्तावाला देखता है, इसके अतिरिक्त सब चीज-विकल्प से लेकर समस्त जगत जाल, उसे छोड़कर **तृण समान (तुच्छ) देखता है।** आहाहा! चक्रवर्ती का राज और इन्द्र के इन्द्रासनों को धर्मी तृण समान जानता है। आहाहा! जैसे तिनके की कीमत नहीं, वैसे ही इन्द्रजाल और चक्रवर्ती के पद की भी आत्मा के समकित के ध्येय ऐसे आत्मा की कीमत के समक्ष तृण समान है। आहाहा! आज तो एकदम दो भाग किये, जिसे नित्यानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य की जिसे अवलम्बन की दशा प्रगट हुई है, वह अपने अतिरिक्त विकल्प से लेकर समस्त जग जाल को तृण समान जानता है। बड़ी पदवी मिले तो भी तृण समान जानता है। आहाहा! तीर्थंकर की पदवी भी समकिती तृण समान जानता है। पदवी अर्थात् क्या? वह तो जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधा, उस भाव का नाश हो, तब उस प्रकृति का उदय आता है। उसकी कीमत क्या? आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधा, उस भाव का नाश होवे तब केवली को तीर्थंकर प्रकृति का उदय आता है। आहाहा!

यहाँ तो **सर्व जगतजाल...** आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त कोई कीमती, विस्मय, अधिक, आश्चर्यकारी जगत में कोई चीज़ है ही नहीं। आहाहा! ऐसा अन्तर में जानकर **(समस्त लोकसमूह को) तृण समान (तुच्छ) देखता है।** आहाहा! समस्त जगत। इन्द्र के इन्द्रासन भी तृण समान देखता है। जहाँ चैतन्यरत्न हाथ आया... आहाहा! उसमें अनन्त गुण भरे हैं, जिसमें अनन्त गुण की राशि का पिण्ड है, जिसके गुण की संख्या का जहाँ पार नहीं, ऐसा प्रभु जिसे दृष्टि में अन्दर आया, कहते हैं कि उसे सब तृण समान है। इसके अतिरिक्त कोई चीज़... आहाहा! अरबों रुपये पैदा हो और चक्रवर्ती का पद मिले और इन्द्रासन मिले, महीने में पाँच-पच्चीस हजार के वेतन की पदवी मिले (तो भी) उसे तृण

समान जानता है। आहाहा! कहाँ भगवान और कहाँ यह! कहाँ प्रभु और कहाँ यह? कहाँ हीरा और कहाँ पत्थर! चैतन्य हीरा। अनन्त-अनन्त गुण से चैतन्य चमत्कार से भरपूर, जिसे एक क्षण में तीन काल-तीन लोक मेरेरूप से मानना नहीं परन्तु जाननेरूप से वह व्यवहार है। आहाहा! अपना स्वभाव ही जानता है, वह तो। ऐसे जीव को पूरा जगत तृण समान लगता है। आहाहा! ऐसा मार्ग! यहाँ तो एक जरा कुछ अनुकूल ऐसा हो, कपड़े अच्छे पहने, गहने अच्छे पहने या लड़के के विवाह का प्रसंग हो, आहाहा! वहाँ उत्साह और हर्ष (हो जाता है)। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, पूरी दुनिया... ओहोहो!

मुमुक्षु : मुनि के पास दुनिया थी ही कहाँ, वह छोड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर है न? यहाँ तो बाहर है न! बाहर है, उसका लक्ष्य छोड़ना। वस्तु तो छूटी हुई ही है, वस्तु कहीं आत्मा में है नहीं। आहाहा! उसे तृण समान देखता है, ऐसा कहा। उसे कुछ मानता नहीं। उसे तृण समान देखता है। आहाहा! वस्तु के स्वभाव के समक्ष-चैतन्य के स्वभाव के समक्ष पूरे जगत को तृण समान देखता है। मेरेरूप से तो नहीं परन्तु तृण समान जानता है। आहाहा!

मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव का यह कलश है। आहाहा!

इसीप्रकार (श्रीमूलाचार में पंचाचार अधिकार में २१९वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:— कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

परियट्टणं च वायण पुच्छण अणुपेक्खणा य धम्मकहा।
थुदि-मंगल-संजुत्तो पंच-विहो होदि सज्झाउ।।

गाथार्थ : आहाहा! कहते हैं कि **परिवर्तन (पढ़े हुए को दुहरा लेना वह),...** यह विकल्प-राग है। आहाहा! **वाचना (शास्त्र-व्याख्यान),...** करना वह राग। आहाहा! वह धर्म नहीं, धर्म का कारण नहीं। **पृच्छना (शास्त्र श्रवण),...** शास्त्र श्रवण, पूछना आदि। आहाहा! वह भी विकल्प है। वह भी एक राग का जाल है। आहाहा! प्रभु जहाँ चैतन्यमूर्ति निष्क्रिय—राग की क्रियारहित ऐसा निर्मलानन्द प्रभु, उसके समक्ष यह शास्त्र का वांचन आदि भी कहते हैं कि विकल्प और तुच्छ है। आहाहा! इसकी महिमा करने योग्य नहीं है। आहाहा!

अनुप्रेक्षा (अनित्यत्वादि बारह अनुप्रेक्षा)... बारह अनुप्रेक्षा विचार। आहाहा! यह सब शुभभाव स्वाध्याय है। यह कोई आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति का साधन भी यह नहीं है। आहाहा! स्वरूप अन्दर चिदानन्द आत्मा का साधन यह नहीं है। आहाहा! यहाँ तो अनुप्रेक्षा, ये चार बोल हुए। अब धर्मकथा जो पाँचवाँ बोल है। **धर्मकथा...** उसके साथ **(६३ शलाकापुरुषों के चारित्र)...** का वर्णन। उसमें साथ ही स्तुति और मंगल। साथ ही स्तुति और मंगल भी मिलाना। इस धर्मकथा के साथ में। ऐसा होकर पाँच प्रकार हुए। यह स्वाध्याय के पाँच प्रकार। आहाहा!

धर्मकथा... और भगवान की स्तुति, देव और मुनि को वन्दन। धर्मकथा, स्तुति और मंगल होकर स्वाध्याय का पाँचवाँ प्रकार है। यह स्वाध्याय का पाँचवाँ भेद है। आहाहा! यह स्वाध्याय एक विकल्प है, कहते हैं। आहाहा! निर्विकल्प चैतन्य भगवान में जिसका स्पर्श भी नहीं है। आहाहा! स्तुति और स्तवन, मांगलिक स्वाध्याय में डाला है। वह नहीं, वह शुभ है। आहाहा! लोगों को कठिन बातें (लगती है)। **धर्मकथा...** यह स्वाध्याय का पाँचवाँ बोल है। इसके साथ भगवान की, तीर्थंकर की, मुनि की स्तुति और उसका मांगलिक वह धर्मकथा में साथ में डालकर यह पाँचवीं स्वाध्याय है। ये पाँचों स्वाध्याय है। कहा न? **परिवर्तन, वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा, ऐसे पाँच प्रकार का, स्तुति तथा मंगल...** ये तीन होकर एक। ऐसा होकर पाँच स्वाध्याय है। आहाहा! स्वाध्याय है अर्थात्? स्व-अध्याय है, ऐसा नहीं। यह सज्झाय है। यह गाथा में पहले आ गया है। यह सज्झाय है, विकल्प है, एक राग है। आहाहा! प्रभु तो इस स्तुति और रागरहित है। इसमें स्तुति और मांगलिक का विकल्प भी नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वाध्याय को तो परम तप कहा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वाध्याय आत्मा का। स्व-अध्याय... अपने आनन्द का अनुभव, निर्विकल्प शान्ति और आनन्द का अनुभव, वह उत्तम मांगलिक है। आहाहा! वह तप है। तप की व्याख्या की थी।

अन्तर में आनन्दस्वरूप का परितपन, शान्ति की वृद्धि, आनन्द की वृद्धि, शुद्धि की वृद्धि, उसे यहाँ तपस्या कहा जाता है। आहाहा! यह अपवास आदि को तपस्या, वह तो लंघन है। वह बाहर के निमित्त हैं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! धर्म और संसार दोनों

एकदम उल्टे। आहाहा! कहाँ भगवान आत्मा। यहाँ कहते हैं कि यह पाँच प्रकार की स्तुति भी नहीं। आहाहा!

अब इसमें वाद-विवाद किसके साथ करना? यह आगे कहेंगे। ऐसे प्रकार हैं तो किसके साथ तू वाद-विवाद करेगा? एक ओर अकेला भगवान ही है तथा दूसरी ओर सब विकल्प के जाल से लेकर यह जगत है। आहाहा! उसमें सूक्ष्म विकल्प से भी वांचन और उससे भी कुछ धर्म हो... आहाहा! आ गया न? वाचना आ गया न? वाचना में से यह दुहराने में से, यह शास्त्र श्रवण करने से, प्रश्न पूछने से... आहाहा! बारह प्रकार की अनुप्रेक्षा का विचार करने से और धर्मकथा तथा स्तुति और मंगल अर्थात् ये तीन होकर एक तथा वे चार, ये पाँच स्वाध्याय हैं। यह आत्मा की दशा नहीं। आहाहा!

एक ओर कहते हैं कि आगम का अभ्यास करना। वह स्वलक्ष्यी। वहाँ स्वलक्ष्य का देखना। यहाँ कहते हैं परन्तु यदि लक्ष्य नहीं तो वह अभ्यास राग है, विकल्प है। अन्तर आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान, अनन्त गुण से भरपूर निर्विकल्प चीज़ के समक्ष विकल्प से लेकर पूरा जगत तृण समान है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी स्वरूप के समक्ष तृण समान है। आहाहा! अब ऐसा जँचना।

गाथा-१५४

जदि सक्कदि कादुं जे पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।
सत्ति-विहीणो जा जइ सद्दहणं चेव कायव्वं।।१५४।।

यदि शक्यते कर्तुं अहो प्रतिक्रमणादिकं करोषि ध्यानमयम्।
शक्ति-विहीनो यावद्यदि श्रद्धानं चैव कर्तव्यम्।।१५४।।

अत्र शुद्धनिश्चयधर्मध्यानात्मकप्रतिक्रमणादिकमेव कर्तव्यमित्युक्तम्। मुक्तिसुन्दरीप्रथम-दर्शनप्राभृतात्मकनिश्चयप्रतिक्रमणप्रायश्चित्तप्रत्याख्यानप्रमुखशुद्धनिश्चयक्रियाश्चैव कर्तव्याः संहननशक्तिप्रादुर्भावे सति हंहो मुनिशार्दूल परमागममकरन्दनिष्यन्दिमुखपद्मप्रभसहजवैराग्य-प्रासादशिखरशिखामणे परद्रव्यपराङ्मुखस्वद्रव्यनिष्णातबुद्धे पञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्र-मात्रपरिग्रह। शक्तिहीनो यदि दग्धकालेऽकाले केवलं त्वया निजपरमात्मतत्त्वश्रद्धानमेव कर्तव्यमिति।

जो कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक कीजिये।
यदि शक्ति हो नहिं तो अरे श्रद्धान निश्चय कीजिये॥१५४॥

अन्वयार्थ : [यदि] यदि [कर्तुम् शक्यते] किया जा सके तो [अहो] अहो! [ध्यानमयम्] ध्यानमय [प्रतिक्रमणादिकं] प्रतिक्रमणादि [करोषि] कर; [यदि] यदि [शक्तिविहीनः] तू शक्तिविहीन हो तो [यावत्] तब तक [श्रद्धानं च एव] श्रद्धान ही [कर्तव्यम्] कर्तव्य है।

टीका : यहाँ शुद्धनिश्चयधर्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि ही करनेयोग्य हैं, ऐसा कहा है।

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि, परद्रव्य से पराङ्मुख और स्वद्रव्य में निष्णात बुद्धिवाले, पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह के धारी,

परमागमरूपी [१]मकरन्द झरते मुखकमल से शोभायमान हे मुनिशार्दूल! (अथवा परमागमरूपी मकरन्द झरते मुखवाले हे पद्मप्रभ मुनि शार्दूल!) संहनन और शक्ति का [२]प्रादुर्भाव हो तो मुक्तिसुन्दरी के प्रथम दर्शन की भेंटस्वरूप निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रायश्चित्त, निश्चयप्रत्याख्यान आदि शुद्धनिश्चयक्रियाएँ ही कर्तव्य है। यदि इस दग्धकालरूप (हीनकालरूप) अकाल में तू शक्तिहीन हो तो तुझे केवल निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान ही कर्तव्य है।

गाथा - १५४ पर प्रवचन

अब गाथा १५४। बहुत कठिन बात की। बहुत सूक्ष्म बात और सूक्ष्म कही, इसलिए अब कहते हैं।

जदि सक्कदि कादुं जे पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।
सत्ति-विहीणो जा जइ सद्दहणं चेव कायव्वं।।१५४।।

जो कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक कीजिये।
यदि शक्ति हो नहिं तो अरे श्रद्धान निश्चय कीजिये॥१५४॥

आहाहा! क्या कहते हैं?

टीका : यहाँ शुद्धनिश्चयधर्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि ही करनेयोग्य हैं, ऐसा कहा है। शुद्धनिश्चयस्वरूप, आनन्दस्वरूप में लीनता, वह प्रतिक्रमण, वह प्रत्याख्यान, जो कहो वह। वह यहाँ कहा है। है? **यहाँ शुद्धनिश्चयधर्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि...** बाहर की सब दशाएँ। वह सब करनेयोग्य है, ऐसा कहा है। शुद्धनिश्चय धर्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमण करनेयोग्य है, व्यवहार नहीं। आहाहा! अब ऐसा धर्म। सम्प्रदाय में ऐसा सुना था कभी कानजीभाई? दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, अपवास करो, प्रौषध करो। आहाहा! तो धर्म है, जाओ। आहाहा! परन्तु प्रभु एक ओर पूरा पड़ा रहा न! तीन लोक का नाथ अनन्त सत्ता का धनी, जिसके एक समय के ज्ञान में अनन्त गुण की एक गुण की एक पर्याय में तीन काल-तीन लोक, उसके सन्मुख देखने से ज्ञात हो, ऐसा भी नहीं; अपने में

१. मकरन्द=पुष्प-रस, पुष्प-पराग। २. प्रादुर्भाव=उत्पन्न होना वह; प्राकट्य; उत्पत्ति।

ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा! ऐसी जो चैतन्यसत्ता, उसकी श्रद्धा और अनुभव बिना पूरा जगत तृण समान है। आहाहा!

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि,... मुनिराज की मुख्य बात की है। स्वाभाविक वैराग्य। आत्मा में आनन्द के अतिरिक्त, वैराग्य अर्थात् पुण्य-पाप से भी जहाँ विरक्त है। पुण्य-पाप से विरक्त, इसका नाम वैराग्य। पूरी दुनिया तो बाहर रह गयी और अन्दर पुण्य-पाप के दो भाव से वैराग्य-विरक्त। उनसे विरक्त तो वैराग्य। आहाहा! ऐसा स्वाभाविक वैराग्यरूपी महल, उसका शिखर-टोंच, उसका शिखामणि। आहाहा! टोंच का शिखामणि। आहाहा!

वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि, परद्रव्य से पराङ्मुख... आहाहा! **और स्वद्रव्य में निष्णात बुद्धिवाले,...** आहाहा! परद्रव्य से पराङ्मुख। तीन लोक का नाथ ऐसा कहते हैं कि मुझसे भी पराङ्मुख। आहाहा! मैं परद्रव्य हूँ। तेरा लक्ष्य हमारे प्रति जाएगा तो तुझे राग होगा। तेरे स्वरूप में से हट जाएगा। आहाहा! ऐसी चीज़ है। सम्प्रदाय में तो कभी सुनी भी नहीं थी और यहाँ आयी तो कठिन लगता है। वह बाहर का यह करना... यह करना... यह करना... वांचना, विचारना, अमुक, यह सब विकल्प है। अकेला चिदानन्द नाथ, अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द और शान्ति का दल ध्रुव भगवान आत्मा के समक्ष विकल्प से लेकर पूरी दुनिया तृण समान है। आहाहा!

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि, परद्रव्य से पराङ्मुख... है। आहाहा! वैराग्य उसे कहते हैं, स्वाभाविक वैराग्य उसे कहते हैं कि जो परद्रव्य से पराङ्मुख है, विकल्प से भी पराङ्मुख है, उसे वैराग्य कहते हैं। आहाहा! स्त्री, पुत्र छोड़े और दुकान छोड़ी और पैसे छोड़े, साधु हुआ, इसलिए वैराग्य है - ऐसा नहीं है। वह वैराग्य नहीं है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव से वैराग्य अर्थात् विरक्ति, ऐसा जो **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के...** टोंच, आहाहा! जिसमें परद्रव्य की गन्ध नहीं होती। आहाहा! **परद्रव्य से पराङ्मुख...** परमेश्वर के पाँच पद, उनसे भी पराङ्मुख है। आहाहा! बात सुनना कठिन पड़ती है।

भगवान निज प्रभु, अनन्त आनन्द का धाम। 'स्वयं ज्योति सुखधाम'। श्रीमद् में आता है। 'स्वयं ज्योति सुखधाम' आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसे पर से वैराग्य

है और स्वसन्मुख की जिसे लीनता है, स्वसन्मुख की जिसे धगश है और परसन्मुख से जिसे पूर्ण वैराग्य है। वह परद्रव्य से पराङ्मुख **और स्वद्रव्य में निष्णात बुद्धिवाले,...** आहाहा! यह नियमसार आचार्य ने स्वयं के लिये बनाया है। अकेला तत्त्व-मक्खन! आहाहा! विकल्प का भी जिसे अवकाश नहीं। मैं एक ज्ञायक हूँ, ऐसे विकल्प को भी जहाँ अवकाश नहीं, तो उसके बदले यह द्रव्य है, यह गुण है और यह पर्याय है, इन तीन भेद का वहाँ अवकाश ही नहीं है। आहाहा!

ऐसा **परद्रव्य से पराङ्मुख और स्वद्रव्य में निष्णात बुद्धिवाले,...** परद्रव्य से पराङ्मुख-वैराग्य। स्वद्रव्य में लीनता, स्वद्रव्य में निष्णात। अपने आनन्द आदि गुण में निष्णात। पूर्ण जानपनेवाला निष्णात है। लोग नहीं कहते ? कि यह मनुष्य इसमें निष्णात है। ऐसे आत्मा में निष्णात है। आहाहा! स्वद्रव्य में निष्णात, परद्रव्य से पराङ्मुख। अस्ति-नास्ति की है। आहाहा! यहाँ एक सामायिक करे, प्रौषध करे। समकितरहित भान (हो नहीं)। हो गया धर्म। आहाहा! प्रभु! ऐसा मनुष्यभव (मिला) उसमें यह धर्म मिला। यह यदि नहीं किया और सुनने में भी मिला नहीं और उसमें इसे जँचा नहीं... आहाहा! तब तो भव का अभाव करने का कुछ हुआ नहीं। आहाहा! करना यह है।

परद्रव्य, सर्व परद्रव्य, विकल्प से लेकर शब्द, द्रव्यश्रुत, भगवान सबसे पराङ्मुख; एक स्वद्रव्य के सन्मुख। परद्रव्य से पराङ्मुख, स्वद्रव्य से सन्मुख। आहाहा! निष्णात बुद्धिवाले। **पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित...** मुनि की बात है न ? मुनि की बात करते हैं। पाँच इन्द्रियों को गोपन कर दी है। **देहमात्र परिग्रह के धारी,...** मुनि उसे कहते हैं कि जिसे एक शरीरमात्र है। आहाहा! उसमें ऐसा कहे, वह तो दिगम्बर मानते हैं। हमारे श्वेताम्बर में दूसरा माना जाता है। ऐसा कहते हैं। वस्तुस्थिति यह है, भाई। पूरी दुनिया से पराङ्मुख और स्वसन्मुख ऐसे मुनि को परिग्रह कहाँ से होगा। आहाहा!

पाँच इन्द्रियों के विस्तार... अर्थात् विस्तार। पाँच इन्द्रियों के विकल्पों के विस्तार से **रहित देहमात्र परिग्रह के धारी,....** मुनि तो एक देहमात्र परिग्रह है। वह शरीरमात्र है। **परमागमरूपी मकरन्द झरते मुखकमल से...** आहाहा! परमागमरूपी पुष्परस। जैसे फूल का रस, वैसे रस झरते मुखकमल से **शोभायमान...** लो! देखा! पहले कहा कि मैं सब चीज़ों से विमुख हूँ। यहाँ मात्र वाणी उसके मुखकमल में से निकलती है, कहते हैं।

आहाहा! **परमागमरूपी मकरन्द झरते मुखकमल से...** परमागम का रस झरता है। आहाहा! जैसे प्रभु में से आनन्द झरता है, वैसे सच्चे मुनि में से सच्चा मकरन्द-वाणी, जैसे फूल का रस होता है, वैसे वस्तु का सार-रस-मक्खन झरता है। आहाहा! फूल में सुगन्ध होती है न? वैसे सुगन्ध जिसके मुख में से झरती है। उससे जिनका शोभायमान मुख है। आहाहा!

ऐसे **हे मुनिशार्दूल!** स्वयं को कहते हैं। हे मुनिशार्दूल! आहाहा! **(परमागमरूपी मकरन्द झरते मुखवाले हे पद्मप्रभ मुनि शार्दूल!)** स्वयं स्वयं को कहते हैं। आहाहा! **संहनन और शक्ति का प्रादुर्भाव हो...** संहनन मजबूत हो, शक्ति का सहारा सब अनुकूल हो। **'प्रादुर्भाव=उत्पन्न होना वह; प्राकट्य; उत्पत्ति।' तो मुक्तिसुन्दरी के प्रथम दर्शन की...** आहाहा! मुक्तिरूपी सुन्दरी के प्रथम दर्शन की **भेंटस्वरूप निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रायश्चित्त, निश्चयप्रत्याख्यान...** यह भेंट और प्रसन्न (करने का), मिलने का साधन है। आहाहा! भाषा ही किस प्रकार की है। बहियों में ऐसी नहीं होगी, सुनने में नहीं आयी हो। आहाहा!

कहते हैं कि **परमागमरूपी मकरन्द झरते...** आहाहा! अकेला आत्मरस झरता है, कहते हैं। उनकी वाणी में आत्मा की सन्मुखता की ही बात करते हैं, ऐसा कहते हैं। मुनि उसे कहते हैं कि जिन्हें आत्मा की सन्मुखता की वीतरागता ही झरती है। पर से विमुखता, स्व से सन्मुखता। आहाहा! ऐसे **परमागमरूपी...** परम आगमरूपी परन्तु, हों! अकेला आगम नहीं कहा। परमागम। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ। वह वाणी। आहाहा! बाद में कोई कल्पित बनाकर भगवान का नाम दिया हो (और कहे) यह भगवान की वाणी है। वह वाणी नहीं। आहाहा!

(परमागमरूपी मकरन्द झरते मुखवाले हे पद्मप्रभ मुनि शार्दूल!) आहाहा! **संहनन...** इसकी व्याख्या की। ऊपर इसका अर्थ किया है, देखो! मुनि शार्दूल स्वयं। **संहनन और शक्ति का प्रादुर्भाव न हो...** केवलज्ञानादि प्राप्त करने की ऐसी शक्ति अन्दर में न हो... आहाहा! अरे! चारित्र भी लेने की शक्ति न हो... आहाहा! तो **निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रायश्चित्त, निश्चयप्रत्याख्यान आदि शुद्धनिश्चयक्रियाएँ ही कर्तव्य है।** कर्तव्य तो यही है। पंचम काल में भी करना तो यही है। आहाहा! दग्ध काल है तो भी करना तो यह निश्चय। **यदि इस दग्धकालरूप (हीनकालरूप) अकाल में तू शक्तिहीन हो...**

आहाहा! अन्दर में कमजोरी हो। बचाव करना नहीं कि कमजोरी में ऐसा आवे तो भी दिक्कत नहीं। ऐसा बचाव करना नहीं। आहाहा! है? आहाहा! **दग्धकालरूप (हीनकालरूप) अकाल में तू शक्तिहीन हो तो तुझे केवल निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान ही कर्तव्य है।** आहाहा! निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान, वह मुख्य कर्तव्य है। सब एक ओर रख दे, भले शक्ति न हो तो। चारित्र ग्रहण की शक्ति न हो... आहाहा! परन्तु भगवान परमात्मतत्त्व जो त्रिकाली आनन्द का सागर नाथ... आहाहा! ऐसा जो परमात्मतत्त्व, निज परमात्मतत्त्व, हों! भगवान भी नहीं। उस **केवल निज परमात्मतत्त्व का...** आहाहा! एक ही निज परमतत्त्व, परमात्मतत्त्व। आहाहा! उसका **श्रद्धान ही कर्तव्य है।** ऐसा मुनिराज ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। मूल पाठ है न? **सत्ति-विहीणो जा जइ सद्दहणं चेव कायव्वं** श्रद्धा में... कुछ फेरफार करना नहीं। श्रद्धा में फेरफार करना नहीं। वह तो ऐसा हो, ऐसा भी हो, अमुक हो, अमुक हो। पंचम काल है। अभी व्यवहार ही मुख्य होता है - ऐसा आड़ा-टेड़ा करना नहीं, श्रद्धा मिथ्यात्व हो जाएगी। तीनों काल में सनातन सत वीतराग विकल्परहित तत्त्व है, उसकी श्रद्धा करना, वही है। आहाहा! है?

निज परमात्मतत्त्व का... शक्ति न हो तो। **श्रद्धान ही...** आहाहा! उसकी श्रद्धा तू पक्की रखना। अनुभव आनन्द का नाथ मैं हूँ, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर हूँ। मैं विकल्प और उसका कर्ता नहीं हूँ। मेरे स्वरूप में संसार नहीं है, ऐसी श्रद्धा तू पक्की रखना, कहते हैं। आहाहा! पंचम काल **दग्धकाल...** दग्धकाल भाषा ली है? आहाहा! **दग्धकालरूप (हीनकालरूप)...** दग्ध का अर्थ हीन लिया। हीनकाल, पंचम काल में अर्थात् कि **अकाल में...** इस काल में। आहाहा!

तू शक्तिहीन हो तो तुझे केवल निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान ही कर्तव्य है। आहाहा! स्वयं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं और टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव भी कहते हैं। मूल पाठ में है। **जदि सक्कदि कादुं जे..** यदि समर्थ होवे तो करना। '**ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक**' निश्चय। आता है न ध्यानमय। ध्यानमय करना। ध्यान, निजानन्द ध्यान। **सत्ति-विहीणो** ध्यान की शक्तिरहित होवे **सद्दहणं चेव कायव्वं।** आहाहा! दूसरा सब अन्तर भले हो परन्तु श्रद्धा में अन्तर करना नहीं। आहाहा! श्रद्धा बराबर रखना। वस्तु तो पूर्णानन्द का नाथ स्वावलम्बन से प्रगट होती है, उसे कोई अवलम्बन नहीं है -

रागादि के अवलम्बन से और व्यवहार से... आहाहा! पर के अवलम्बन से किसी भी प्रकार से स्व का अवलम्बन हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। इस काल में भी ऐसा मानना नहीं। आहाहा! दग्धकाल में, हीनपने में भी ऐसा मानना नहीं। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ अन्दर प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर वह स्वयं अपनी पर्याय स्वभाव से ही प्रगट होगी। स्वाभाविक वस्तु स्वभाव से ही प्रगट होगी, ऐसी श्रद्धा पक्की रखना। स्वाभाविक वस्तु विभाव और निमित्त से प्रगट होगी, काल हल्का है और हल्का है इसलिए, ऐसा मानना नहीं। मानेगा तो मर जाएगा। आहाहा! कुछ बचाव करना नहीं। थोड़ा सा तो ऐसा चाहिए न, थोड़ा सा तो ऐसा चाहिए न। कुछ थोड़ी सी तो गुरु की सहायता चाहिए न? शास्त्र की थोड़ी सहायता चाहिए न? थोड़ा सा शास्त्र वांचन कुछ विशेष होवे (तो होगा)। ऐसा कुछ करना नहीं।

मुमुक्षु : थोड़ा हाथ हल्का करना, थोड़ा... हल्का करे तो समाधान हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हल्का-बल्का कुछ है नहीं। यह हल्का ही है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं और पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। शक्ति न होवे तो तीन लोक के नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति का सागर, उसे अपूर्ण, विकल्प और अशुद्ध मानना नहीं। आहाहा! शक्ति न हो तो उसे तो पूर्ण मानना। वह तो मूल पहला कर्तव्य है। इस कर्तव्य से रहित दूसरा सब कर्तव्य एक बिना के शून्य हैं। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, घीयाजी! आहाहा! प्रभु! तुझे शक्ति न हो, काल हल्का है, साधन और संहनन भी मजबूत न हो परन्तु यह तो रखना। इसमें कुछ साधन और संहनन और शरीर की कहाँ आवश्यकता है? विकल्प की भी जहाँ आवश्यकता नहीं। विकल्प तो पंचम काल में हो सकता है। आहाहा! उससे भी आत्मा हो, यह बात रहने देना। शक्तिविहीन हो तो भी यह तो मानना ही नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। अलौकिक बातें हैं। सुनने को मिलना मुश्किल पड़ती है। सम्प्रदाय में कहाँ बात है? आहाहा! बाहर की क्रिया और कुछ नग्नपना बराबर हो, बस महिमा करे, फिर प्रशंसा करे। आहाहा! परन्तु मूल वस्तु, जो मूल जो चैतन्य मूल, उसका काल पाके, तब केवलज्ञान होता है। आहाहा! ऐसा चैतन्य मूल तत्त्व है, वह महासत्ता तीन काल-तीन लोक को एक समय में जाने, ऐसी शक्तिवाला तत्त्व है। ऐसी अनन्त पर्याय का धनी भगवान है एक गुण; ऐसे अनन्त गुण का तत्त्व, सत्त्व है।

उस तत्त्व को मानने में हीनता करना नहीं। वहाँ शिथिलता करना नहीं, वहाँ बहाना लाना नहीं। कुछ बहाना, यह चाहिए, ऐसा चाहिए, थोड़ा सा तो चाहिए न? अमुक तो चाहिए न! आहाहा! बहुत सरस गाथा है। आहाहा!

इस **दग्धकालरूप (हीनकालरूप) अकाल में तू शक्तिहीन हो...** आहाहा! क्योंकि मार्ग तो निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रत्याख्यान अन्दर में आनन्दस्वरूप में रहना, वह है। कोई विकल्प और वह कोई वस्तु नहीं है। निर्विकल्प आनन्द का नाथ सागर वह निर्विकल्परूप से, वीतरागभावरूप से प्रगट हो, वह धर्म है। वीतरागरूप से प्रगटे, वीतरागस्वरूप है, वह धर्म है। ऐसी वीतरागपने की प्रतिक्रमणादि की क्रिया की वीतरागता न प्रगटे तो आडा-टेड़ा घोटाला करना नहीं। शक्तिहीन होवे तो श्रद्धा तो रखना। आहाहा!

केवल निज परमात्मतत्त्व का... आहाहा! भगवान का और पंच परमेष्ठी का नहीं। आहाहा! क्योंकि वे तो पर हैं। परद्रव्य से तो भिन्न है। **केवल (एक) निज परमात्मतत्त्व...** आहाहा! केवल अर्थात् एक। निज परमात्मतत्त्व का **श्रद्धान ही कर्तव्य है।** आहाहा! गजब बात की है न! यदि श्रद्धा में गड़बड़ करेगा तो मर जाएगा। हाथ नहीं आयेगा चौरासी में। पहले कहा था न, अष्टपाहुड़ में। '**सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति**' (गाथा-३) आहाहा! चारित्र भ्रष्ट होगा, वह सिझेगा, परन्तु श्रद्धा में कुछ फेरफार आया तो भ्रष्ट में भ्रष्ट है। दर्शनभ्रष्ट, ज्ञानभ्रष्ट है, चारित्रभ्रष्ट है। तीनों ही भ्रष्ट है। यह लिया है। पहले अध्याय में। दर्शनभ्रष्ट है, वह ज्ञानभ्रष्ट, चारित्रभ्रष्ट तीनों भ्रष्ट है और चारित्रभ्रष्ट है, वह दर्शनभ्रष्ट नहीं। वह मुक्ति को प्राप्त करेगा। चारित्रभ्रष्ट को ख्याल है कि मेरे ख्याल में कचास है परन्तु श्रद्धा में यदि कोई अन्तर किया तो चौरासी के अवतार में मर जाएगा। आहाहा! है न? चारित्रभ्रष्ट शब्द ऐसा है। '**सिज्झंति चरियभट्ठा**'

यहाँ कहते हैं, यह कुन्दकुन्दाचार्य का कथन है। आहाहा! वहाँ भी कुन्दकुन्दाचार्य का कथन है। चारित्रभ्रष्ट '**सिज्झंति**' आहाहा! वही इसका अर्थ यह कहते हैं। शक्ति कम हो, चारित्र न हो... आहाहा! श्रद्धा में कहीं गड़बड़ करना नहीं। एक भी पक्ष कहीं पोला और पोचा करना नहीं कहीं। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ **केवल निज परमात्मतत्त्व...** ऐसा शब्द लिया है। केवल एक निज परमात्मतत्त्व, आहाहा!

शक्तिहीन हो तो तुझे केवल निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान ही कर्तव्य है।

आहाहा! पाठ में है न? **जदि सक्कदि कादुं जे** कुन्दकुन्दाचार्य का। शक्ति होवे तो करना। **पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।** ध्यानमय, आनन्दमय अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त होना, वह प्रतिक्रमण और पडिक्कमण है, वह प्रत्याख्यान है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का उभार करना, अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार लाना, उसका नाम प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान है। यदि वह शक्ति होवे तो करना। **सत्ति-विहीणो जा जइ सद्दहणं चेव कायव्वं।** यति को ऐसा कहते हैं। आहाहा! बापू! शक्ति न हो, प्रभु! परन्तु जैसा है, उसमें कहीं पौणे सोलह आना श्रद्धा में अन्तर डालना नहीं। कहीं यदि श्रद्धा की विपरीत शल्य रह गयी तो संसार में भटकते हुए पता नहीं लगेगा। आहाहा! चौरासी के अवतार में भटकेगा। ओहोहो! ऐसी बात रखी है।

स्वयं अपने लिये बनाया है। यह सूत्र स्वयं अपने लिये बनाया है। कुछ भी ऐसा या शिथिल होगा तो भी बचाव करना नहीं। आहाहा! वस्तु तो त्रिकाली चिदानन्द प्रभु है। उसके अवलम्बन से ही मुक्ति का शरण है, मुक्ति की उत्पत्ति है, मुक्ति के मार्ग की उत्पत्ति है। त्रिकाली भगवान के शरण से ही मुक्ति के मार्ग की उत्पत्ति है। आहाहा! और पूर्णता भी उसकी शरण से ही है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आहाहा! मुनिराज ऐसी बात करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य। चारित्र कदाचित न हो, अरे! यहाँ तक (कि) चारित्रभ्रष्ट हो। आहाहा! श्रद्धा में भ्रष्ट न हो तो वह मुक्ति प्राप्त करेगा क्योंकि उसके ख्याल में है कि यह दोष है। वह दोष टालेगा, उसके ख्याल में है कि यह दोष है। जिसे जो वस्तु है, उसका ख्याल भी नहीं और कहीं... कहीं... कहीं... शल्य में अटका है... आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें आयी नहीं। वहाँ मुम्बई में ऐसा निकले, ऐसा नहीं है। आहाहा! मुम्बई में सूक्ष्म पड़े। आहाहा!

मुमुक्षु : श्रद्धा को पकड़ रखना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। भगवान को पकड़ना। सनातन ज्ञानमूर्ति प्रभु, वीतरागमूर्ति निर्विकल्प सत्ता अनादि-अनन्त महा अनन्त गुण की खान, उसकी श्रद्धा रखना। दूसरा सब भले शिथिल पड़ जाए परन्तु वह श्रद्धा छोड़ना नहीं। आहाहा! अब गाथा की टीका करते हुए मुनिराज श्लोक कहते हैं। लो!.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)